

ओ३म्

‘वेदालोचन के बिना संस्कृत शिक्षा व मनुष्य जीवन व्यर्थ हैं।’

—मनमोहन कुमार आर्य, देहरादून।



मन मोहन कुमार आर्य

कहा जाता है कि ज्ञान की पराकाष्ठा वैराग्य है। इसका अर्थ यह लगता है कि जिस व्यक्ति को जितना अधिक ज्ञान होगा वह उतना ही अधिक वैराग्य को प्राप्त होगा। अब विचार करते हैं कि एक व्यक्ति के अन्दर ज्ञान बहुत ही कम है। इस पहली परिभाषा के अनुसार कहना होगा कि उस व्यक्ति में भौतिक व नश्वर वस्तुओं के प्रति राग अधिक तथा वैराग्य नगण्य है। जैसे-जैसे उसको यथार्थ ज्ञान होता जायेगा, वैसे-वैसे वह व्यक्ति वैराग्य को प्राप्त होता जायेगा। **ईश्वर में ज्ञान की पराकाष्ठा है इससे यह अनुमान होता है कि ईश्वर पूर्ण वैराग्य में स्थित है।** हमें लगता है कि ज्ञान की पराकाष्ठा के लिए मुख्यतः दो चीजों की आवश्यकता है। एक तो भाषा व दूसरा ज्ञान। **सर्वोत्कृष्ट भाषा संस्कृत है व उसमें ज्ञान की पराकाष्ठा वेदों में है।** वेदों का अध्ययन किया हुआ व्यक्ति ही ज्ञान की पराकाष्ठा को प्राप्त हो सकता है। इतर व्यक्तियों का ज्ञान व उनमें वैराग्य न्यूनातिन्यून होगा।

हम कोई भी भाषा क्यों सीखते हैं? इसलिये कि हम अपनी बात दूसरों को संप्रेषित कर सकें और दूसरों की बातें व वाक्यों को समझ सकें। इसलिये भी भाषा सीखते हैं कि उस भाषा का जो साहित्य है उसका अध्ययन कर सकें। इन सबसे हमें जीवन में अनेक लाभ होते हैं। भाषा को सारगर्भित रूप से बोलने वाला व्यक्ति ही सम्मान पाता है और जीवन में सफल होता है। यदि हमें भाषा का आधा-अधूरा अधकचरा ज्ञान है तो यह हमारी सफलता में बाधक होता है। अतः सभी का यह प्रयास होता है कि वह उस भाषा को अधिक से अधिक जाने। इसके लिए उस भाषा के व्याकरण आदि को पढ़ने व उसके अभ्यास के साथ उस भाषा के सामान्य व उच्च कोटि के साहित्य का अध्ययन करने से यह कमी पूरी होती है। जितने भी महान व्यक्ति हमारे देश, विश्व व समाज में हुए हैं वह सब शिक्षा, संस्कार, अध्ययन, लेखन, वक्ता-संवाद-व्याख्यान आदि में उच्च स्थिति प्राप्त करने के कारण ही बने हैं। पं. प्रकाशवीर शास्त्री आर्य समाज के विद्वान, उपदेशक व प्रचारक थे। आप अपने हिन्दी-संस्कृत के ज्ञान तथा सरस, मनोहर, सारगर्भित व प्रभावशाली भाषण शैली के कारण लोकप्रिय हुए और बिना किसी पार्टी के निकट के अनेक बार स्वतन्त्र रूप से सांसद बने और बड़े-बड़े दिग्गजों को निर्वाचनों में पराजित किया। इतना ही नहीं वह अपने समय में संसद के अन्दर व बाहर लोकप्रिय सांसदों में से एक थे जिन्हें देश के प्रधान मंत्री सहित सभी दलों के नेता आदर देने के साथ उनके वक्तव्यों को पसन्द करते थे। हम श्री नरेन्द्र दामोदर मोदी का भी उदाहरण प्रस्तुत करना चाहते हैं जिनका प्रधानमंत्री बनना इस लिए संभव हो सका कि उन्हें अपनी बात को सहस्रों लोगों की सभा में प्रभावशाली रूप से कहने में महारत हासिल रही है। इसके साथ उनका राजनैतिक अनुभव व अनेका विषयों का चिन्तन व ज्ञान तथा उनका व्यक्तित्व व साफ सुथरी छवि भी प्रमुख कारण रहा है। यदि उनमें भाषा बोलने पर पकड़ व सरस व सरल वाणी में अभिव्यक्ति का ज्ञान न होता तो जिस बुलन्दी पर वह आज हैं, वह यहां तक न पहुंच पाते। यदि हम यह कहें कि उन्होंने अपने इस गुण से वर्तमान समय के सब नेताओं को पीछे छोड़ दिया है और पूर्व के सभी नेताओं से वह आगे निकल गये हैं, तो इसमें कोई अन्योक्ति न होगी। अतः भाषा का जीवन में बहुत अधिक महत्व है।

वेदालोचन विषयक महर्षि दयानन्द निर्मित नियम
वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है। वेद का पढ़ना-पढ़ाना व सुनना-सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है।

—महर्षि दयानन्द सरस्वती
(महाभारत के पश्चात वेदों के सर्वोपरि व सर्वोत्तम विद्वान)

ईश्वर ने हमें हमारा शरीर बना कर भेंट किया है जो कि ईश्वर की सभी रचनाओं से अधिक महत्वपूर्ण, कठिन व जटिल होने के साथ सर्वोत्तम रचना है। हमारे शरीर में आंख, नाक, कान, जिह्वा, त्वचा पांच इन्द्रियां हैं जिनका प्रयोग हम देखने, सूंघने, सुनने, चखने या स्वाद के लिए एवं स्पर्श कर नरम व कठोर, ठण्डा व

गरम आदि वस्तु के अनेक गुणों को जानने के उद्देश्यों से करते हैं। इन्हीं उद्देश्यों के लिए यह इन्द्रियां परमात्मा ने बना कर हमें दी है और हमें इनके उपयोग का ज्ञान भी स्वयं ही **inbuilt** रूप से दिया हुआ है। यदि हम इन ज्ञान इन्द्रियों से यह उपयोग न लें तो फिर ईश्वर से हमें इनका मिलना व्यर्थ सिद्ध होता है। जिन लोगों को यह या इनमें से कुछ शक्तियां नहीं हैं वह जीवन भर उन्हें ठीक कराने में इधर उधर घूम कर व चिकित्सा कराकर अपना सारा जीवन व्यतीत कर देते हैं, इससे इन इन्द्रियों की महत्ता का पता चलता है। इसी प्रकार से ईश्वर ने हमें वेदों का ज्ञान व वेदों की भाषा वैदिक संस्कृत का ज्ञान भी दिया व कराया है। **यदि हम संस्कृत भाषा को जानकर वेदों का सर्वांगपूर्ण अध्ययन नहीं करते तो हमारी स्थिति इन्द्रिय विहिन एक अपंग व्यक्ति के समान सिद्ध होती है।** भाषा के अध्ययन से हमें विदित होता है कि हमारे आदि-कालीन सभी पूर्वज इस भाषा को बोलते थे, वेदों का अध्ययन सुनकर करते थे व वेदों का ज्ञान प्राप्त करते थे। वेदों का ज्ञान प्राप्त कर उस ज्ञान का उपयोग वह स्वकल्याण, समाज, देश व विश्व के कल्याण के लिए करते थे। ऐसे प्रमाण मिलते हैं कि अधिकांश लोगों को वेदों के सभी मंत्र स्मरण व कण्ठाग्र होते थे। वह इनके अर्थ भी जानते हैं। हमें हिन्दी भाषा का ज्ञान है। हिन्दी में लिखी अध्यात्म, समाज, राजनीति, कहानी, सरल भाषा के पद्य व गद्य को हम आसानी से समझ सकते हैं। **यदि हमें संस्कृत भाषा का ज्ञान होता तो हम संस्कृत में लिखी हुई पुस्तकों का ज्ञान पढ़कर प्राप्त कर सकते थे। सामान्य पुस्तकें ही क्यों, महाभारत, रामायण, गीता, उपनिषद्, दर्शन, मनुस्मृति, आयुर्वेद आदि के ग्रन्थ और चारों वेदों को पढ़कर अधिकांशतः या पूर्णतः जान सकते थे। हमारा दुर्भाग्य है कि हमें संस्कृत का ज्ञान नहीं है अतः हम इन सभी ग्रन्थों को पढ़ने व समझने में असमर्थ है। हम ही क्या संस्कृत पढ़े लिखे सभी स्त्री व पुरुष भी इन सभी पठनीय ग्रन्थों को नहीं पढ़ते हैं। हमें लगता है कि वह सब कर्तव्यच्युत हैं।** ईश्वर ने वेदों व संस्कृत भाषा का ज्ञान क्यों व किसलिए दिया था?, इस प्रश्न पर विचार करने पर जो तथ्य सामने आते हैं उनसे विदित होता है कि ईश्वर ने वेदों का ज्ञान मानव जीवन को सर्वांगपूर्ण रूप से जीने, ज्ञान विज्ञान को जानने व समझने तथा उससे अपने जीवन को सफल करने, धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष की सिद्धि आदि प्रयोजनों के लिए दिया था। वेदों से दूर जाने या रहने का अर्थ है कि जीवन के यथार्थ उद्देश्य से दूर जाना या रहना है। इससे जीवन विफल होता है। भारी हानि होती है जिसका संसार में कोई उदाहरण नहीं दिया जा सकता। इतना समझ सकते हैं कि यदि किसी की करोड़ों अरबों की सम्पत्ति लूट ली जाये तो उसकी जो हानि होती है उससे अधिक हानि वेद व वैदिक साहित्य का अध्ययन न करने व उसे जानने में कृतकार्य न होने से होती है। **यह बात वेदों के मर्म व रहस्यों को न जानने वालों को समझ में नहीं आ सकती।** इसे तो महर्षि ब्रह्मा, महर्षि दयानन्द, मर्यादा पुरुषोत्तम राम, योगेश्वर श्री कृष्ण, महर्षि पतंजलि, महर्षि कपिल, महर्षि कणाद, महर्षि गौतम, महर्षि वेद व्यास व महर्षि जैमिनी आदि ने ही जाना था या वह लोग जान सकते हैं जिन्होंने वेद और वैदिक साहित्य रूपी महासागर में डूबकी या गोते लगाये हों। हम यह भी कहना चाहते हैं जिसने सत्यार्थ प्रकाश ग्रन्थ पढ़ा है उसे पूरे वैदिक साहित्य को पढ़कर होने वाले ज्ञान का अधिकांश ज्ञान हो जाता है। अतः समस्त संसारवासियों को राग-द्वेष व पक्षपातशून्य होकर न्यूनातिन्यून सत्यार्थ प्रकाश अवश्य पढ़ना चाहिये।

हम यहां प्रो. सन्तराम लिखित संक्षिप्त महाभारत से द्रौपदी, युधिष्ठिरजी के धर्म विषय में शंका करने पर हुए परस्पर सम्वाद को उद्धृत कर रहे हैं। पुस्तक में विद्वान लेखक ने लिखा है – “वन के दुःखों से दुखित द्रौपदी ने एक दिन धर्मराज से कहा – राजन् ! आप कहा करते हैं कि संसार को सुख-दुःख देने वाला विधाता है। सो मालूम देता है कि विधाता जो सुख-दुःख देता है, माता पिता की भांति स्नेह से नहीं और ना ही न्यायकारी विभाजक की तरह पुण्य और पाप देखकर देता है, किन्तु साधारण जनवत् डंडे के डर से बलवानों को सुख और भले मानसों को दुःख देता रहता है और कुछ नहीं। एवमेव धर्म अधर्म भी पुरुष को सुखी दुःखी नहीं करते किन्तु वे भी जहां बलवानों के भय से उन्हें सुख देते हैं, वहां दीन-दरिद्र और शान्त स्वभावी लोगों को दुःख दे जाते हैं। यदि मेरा विचार ठीक न होता तो दुर्योधन आदि पापी नास्तिक, सुखी और आप सर्व प्रकार के सुख एवं सुख साधनों से लम्बे काल के लिए वंचित न होते? **यह सुन धर्मराज बोले — देवी ! आर्य होकर अनार्यों की भांति धर्म और ईश्वर पर शंका मत कर, क्योंकि जो धर्म पर शंका करता है उसका कोई प्रायश्चित्त नहीं। देवि ! धर्म स्वर्ग जाने के लिए विमान एवं भवसागर तरने के लिए दृढ़ नौका है।**

यदि धर्म निष्फल हो तो इतने-इतने बड़े ऋषि, मुनि, राजे, महाराजे क्यों सेवन करें? धर्म के बिना यह सारा जगत् पाप समुद्र में क्षण में डूब जाय। धर्म का करना पुरुष का कर्तव्य है, यह समझ धर्म करना चाहिये।

नाहं कर्मफलान्वेषी राजपुत्रि ! चराम्युत । ददामि देयमित्येव यजे यष्टव्ययित्युत ॥ (वन. 13/2)

धर्मएव मनः कृष्णे ! स्वभावा चैव मेधृतम् । धर्म वाणिज्य को हीनो जघन्यो धर्मवादिनाम् ॥ (वन. 13/5)

राजपुत्रि ! मैं फल की इच्छा से नहीं, किन्तु कर्तव्य समझ दान, यजन आदि कर्म करता हूँ। धर्म को सौदे के ढंग पर करना, धर्मवादियों में निन्दित कर्म कहा है। कृष्णे ! विधाता पर भी आक्षेप मत कर, किन्तु उसे प्रणाम कर। उसकी वेद शिक्षा का पाठ कर, क्योंकि उस अमृत पुरुष की कृपा से मर्त्य स्वभाव मनुज भी 'अमृत' हो जाता है। इस उत्तर को सुन कृष्णा तो शुद्ध संकल्प से ईश्वर और धर्म की महिमा अनुभव करने लग गई, पर भीमसेन बोल उठे। उन्होंने कहा—राजन् ! यदि कर्तव्य पर ही आपकी धारण है तो आप अपने वर्ण धर्म (क्षात्र धर्म) को ग्रहण कीजिये। भिक्षा मांगना और दीन—हीन जनों की भांति लुक छिप कर दिनों को बिताना किस कर्तव्य सूत्र का वचन है? हमने तो सुना है, क्षत्रिय का पालनीय धर्म — बल एवं पौरुष दिखाना है। इसलिए कायरता छोड़, मेरी और अर्जुन की सहायता से शत्रु वन को भस्म कर तेज प्रकाश कीजिये। आखिर सम्बन्धियों को, मित्रों को और अपने को कष्ट देने वाला कर्म कहां का धर्म है? यह तो हमारे विचार में कुकर्म (पाप) ही कहलाने के योग्य है, अतः इसे छोड़ो ! भीम के उत्तर में धर्म राज ने कहा — वीर ! तुम सत्य कहते हो, वनवास क्षत्रियोचित नहीं, पर हम यहां एक सत्य प्रतिज्ञा रूपी धर्म पालने के लिए आए हैं। अब इस धर्म को त्याग पृथ्वी का शासन करना, आर्यत्व के विरुद्ध ही नहीं किन्तु मरने से भी बुरा है—

आर्यस्य मन्ये मरणादगरीयो यद्धर्ममुत्कस्य मही प्रशासेत । (वन पर्व 34/15)

और मेरी प्रतिज्ञा तो धर्म तथा सत्य पालन के सम्बन्ध में यह है —

मम प्रतिज्ञांच निबोध सत्यां वृक्षे धर्मममृताजीविताच्च । राज्यं च पुत्रांश्च यशोधनं च सर्वं न सत्यस्य कलामुपैति ॥

(वन पर्व 34/22)

जीवन और अमृत से भी मैं तो सत्य धर्म को खरीदूंगा, क्योंकि मैं समझता हूँ राज्य, पुत्र, यश, धन आदि सर्व पदार्थ सत्य की अंश कला को भी प्राप्त नहीं हो सकते। इत्यादि विचारों से सबको सन्तुष्ट किया।

वेदालोचना के सम्बन्ध में आईये, महर्षि दयानन्द के जीवन पर दृष्टिपात करते हैं। महर्षि दयानन्द ने मूर्तिपूजा की सत्यता व यथार्थ स्थिति, सच्चे ईश्वर का स्वरूप, उसकी प्राप्ति के उपाय, मृत्यु क्या है व उस पर किस प्रकार से विजय प्राप्त की जा सकती है, प्रश्नों के उत्तर खोजने और उन पर विजय पाने के लिए गृह त्याग किया था। वह अपने भावी जीवन में देश भर में घूमें और विद्वान साधू, महात्मा व योगियों के सम्पर्क में आये। उनकी संगति व निकटता से उनसे ईश्वर व योग सम्बन्धी ज्ञान प्राप्त किया। देश के एक स्थान से दूसरे व इसी प्रकार भ्रमण करते हुए उन्हें अनेक पुस्तकालयों को देखने व अनेकानेक गुण—कर्म—स्वभाव वाले व्यक्तियों से मिलने का अवसर मिला जहां उन्हें हस्तलिखित पाण्डुलियों व प्रतिकृतियों के रूप में अनेक दुर्लभ, ज्ञान व विद्या से परिपूर्ण ग्रन्थों को देखने व पढ़ने का सुअवसर मिला जो शायद ही उनसे पूर्व अन्य किसी को सुलभ हुआ हो? जहां कभी कोई योगी मिलता था तो वह उसे टटोलते थे और सच्चे योगियों का शिष्यत्व प्राप्त कर उनसे योग व उपासना विषयक सभी ज्ञान व क्रियायें समझते थे, उनका अभ्यास कर कृतकार्य होते थे। उन्हें योग के योग्य गुरु मिले जिनसे उन्होंने योग विद्या सीखी व उनका अभ्यास कर सफलता प्राप्त की। इस पर भी उनकी पूर्ण सन्तुष्टि नहीं हुई जबकि आजकल नाममात्र की योग सिद्धि को भी पूर्ण सफलता मान लिया जाता है। इसका कारण क्या था? हमें लगता है कि जब उन्होंने नाना प्रकार के प्राचीन दुर्लभ ग्रन्थ देखें तो उनमें स्थान—स्थान पर ईश्वर प्रदत्त वेदों के ज्ञान का चर्चा मिलती थी जिनसे उनका चित्त वेदों को पूर्ण रूप से जानने को उद्वेलित होता था। योगियों व गुरुओं से पूछने पर उन्हें बताया गया था कि इसके लिए किसी योग्य गुरु से आर्ष परम्परा का संस्कृत व्याकरण का अध्ययन करना होगा। हमें यहां यह भी अनुभव होता है कि योग सीखकर सफलता प्राप्त करने पर यद्यपि हृदय की ग्रन्थियों के टूटने व सर्वसंशयों की निवृत्ति होने पर भी वेदों में जो ज्ञान का समुद्र है, उसका ज्ञान व प्रकाश योगी की आत्मा को नहीं होता। इस अपूर्णता को दूर कर पूर्णता प्राप्त करने के लिए योगी को भी वेदाध्ययन या वेदालोचन आवश्यक होता है। महर्षि दयानन्द ने इस रहस्य को जाना व इसका साक्षात्

किया था। इसी कारण पूर्ण योग सिद्धि से सब कुछ प्राप्त कर लेने पर भी वह वेदों के अध्ययन में तत्पर हुए। वह सन् 1860 में मथुरा पहुंच कर प्रज्ञाचक्षु स्वामी गुरु विरजानन्द सरस्वती से मिले और उनका शिष्यत्व ग्रहण किया। ढाई व तीन वर्ष उनके चरणों में बैठकर उनसे आर्ष व्याकरण का अभ्यास किया व अपने मनोरथ में सिद्धी को प्राप्त होकर आप्त काम हुए। स्वामी गुरु विरजानन्द सरस्वती जी के बारे में कहा जाता है कि वह व्याकरण के सूर्य थे। यह पूर्ण सत्य है, परन्तु व्याकरण का सूर्य क्यों व किसके लिए व किस कारण से थे? हमें अनुभव होता है कि यह सब कुछ उन्होंने वेदालोचना के लिए ही प्राप्त किया था। प्रज्ञाचक्षु होकर भी वह वेद के रहस्यों से पूर्णतया विज्ञ व परिचित थे, ऐसा निष्कर्ष अध्ययन व मनन करने पर निकलता है। तभी तो वह महर्षि दयानन्द को यह मूल्यवान रहस्य बता सके थे कि मनुष्य कोटि के लोगों ने जो ग्रन्थ लिखे हैं उनमें हमारे ऋषियों व महर्षियों की निन्दा व मिथ्या कथायें हैं, वह अनार्ष होने से त्याज्य हैं और ऋषि प्रणीत ग्रन्थ ही आर्ष ग्रन्थ हैं जिनका अध्ययन करना सत्यान्वेषक के लिए आवश्यक व अपरिहार्य है। आर्ष कोटि के ग्रन्थों का अध्ययन कर ही वेदालोचन किया जा सकता है अन्यथा मात्र व्याकरण के अध्ययन से वेदालोचन भली प्रकार से नहीं होता। महर्षि दयानन्द ने आर्ष व अनार्ष सभी प्रकार के ग्रन्थों का अध्ययन किया था। अतः वह आर्ष-अनार्ष का जितना गहन ज्ञान रखते थे, वह महाभारत काल के बाद किसी एक व्यक्ति में कहीं दृष्टिगोचर नहीं होता। इतिहास पर दृष्टि डालने पर स्पष्ट होता है कि महर्षि दयानन्द जितना वेदों व आर्ष ग्रन्थों का ज्ञान किसी के लिए सम्भव भी नहीं था। अतः महर्षि दयानन्द के योग प्रवीण होने पर भी विद्या व ज्ञान प्राप्ति की जो अवशिष्ट भूख उनमें थी, वह गुरु विरजानन्द के यहां अध्ययन करने व बाद में उस पर मनन करने से पूरी हुई। उनके जीवन का उद्देश्य लगभग पूरा हो चुका था। अब वेदालोचना के बाद का अवशिष्ट कर्तव्य उन्हें गुरु विरजानन्द व ईश्वर साक्षात्कार से ज्ञात व प्राप्त हुआ, वह था – वेदों का प्रचार व प्रसार। वेदों का प्रचार व प्रसार, जो महाभारत काल व उसके बाद बन्द व समाप्त हो गया था, उसे पुनर्जीवित करना। यह गुरु विरजानन्द की आज्ञा थी और परमात्मा की प्रेरणा व आज्ञा अर्थात् वेदाज्ञा भी थी। इस जीवन के उद्देश्य व लक्ष्य 'धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष अर्थात् अभ्युदय व निःश्रेयस को उन्होंने सन् 1863 से 30 अक्टूबर, सन् 1883 को अपनी मृत्यु पर्यन्त पालन करके प्राप्त किया।

हमारे यह सब कहने का उद्देश्य यह बताना मात्र है कि संसार के प्रत्येक व्यक्ति का कर्तव्य है कि वह संस्कृत भाषा को पढ़े। संस्कृत व वैदिक साहित्य को पढ़ने से ही उसे अपने साध्य, उद्देश्य व साधनों का ज्ञान होगा व जीवन में सफलता मिलेगी। संस्कृत का अध्ययन करने पर ही वह वेद एवं इतर वैदिक साहित्य का पूर्णतः अध्ययन करने में सफल हो सकते हैं। संस्कृत भाषा के अध्ययन का उद्देश्य ही वेद एवं इतर वैदिक साहित्य का संगोपांग अध्ययन करना है। यदि ऐसा नहीं किया तो संस्कृत न पढ़ने वालों को तो भारी हानि होगी ही, संस्कृत पढ़ने वालों को भी वेद न पढ़ने अर्थात् वेदालोचन न करने से उनका संस्कृत पढ़ना व्यर्थ सिद्ध होगा। इससे ईश्वर प्रदत्त वेद एवं संस्कृत भाषा का यथोचित आदर न करने के कारण ईश्वर की ओर से दण्ड के भागी भी वह मनुष्य अवश्य होंगे। आइये, वेद व संस्कृत के अध्ययन का व्रत लें और ईश्वर के प्रति अपने कर्तव्य का पालन करते हुए जीवन को सफल करें।

—मनमोहन कुमार आर्य

पता: 196 चुक्खूवाला-2

देहरादून-248001

फोन: 09412985121

Email: manmohanarya@gmail.com

पितामह भीष्म द्वारा राज्यसभा में दुर्योधन को गिनाये धर्मराज युधिष्ठिर के गुण

जो श्री कृष्ण द्वारा पाण्डवों को बताये।

दुर्योधन ! तू राजपुत्र नहीं, तेरे गुण भी राजा के नहीं, अतः अस्वामी और अयोग्य होकर तू पर-स्व हरना चाहता है। युधिष्ठिर राजपुत्र है और महात्मा है इस लिए न्यायानुसार राज्य उसका है। युधिष्ठिर कुरुवंश पालक, उत्तम शासक, महानुभाव, सत्यबंध, अप्रमादी शास्त्र स्थित, बन्धुजन सेवी, प्रजाप्रिय, सुहृदानुकम्पी, जितेन्द्रिय, साधुजन रक्षक, क्षमा, तितिक्षा, दम एवं आर्जव सम्पन्न, सत्यव्रती, दयालु और प्रजामत अनुकूल शासनकर्ता है। ये ही गुण उत्तम राजा में होने चाहिये सो उसमें हैं।

—प्रो. सन्तराम (मोगा निवासी—उनकी कृति शुद्ध महाभारत से)